कहानी संग्रह

सुनहरे सपने

तथा अन्य कहानियां

लेखक

श्री हृदय नारायण सरीन
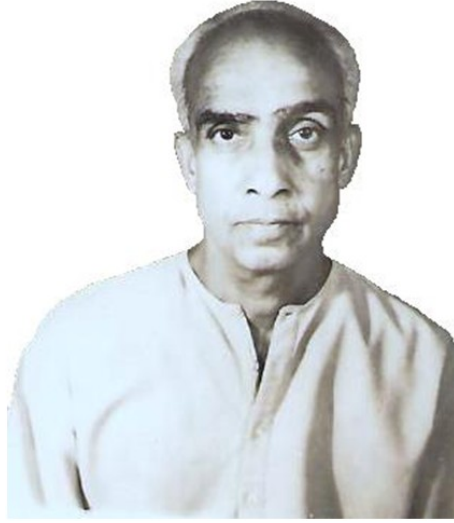
१९११ - १९८२

श्री हृदय नारायण सरीन (बुल्ले बाबू)

(1935)

लेखक श्री हृदय नारायण सरीन

कहानी

सुनहरे सपने

श्री हृदयनारायण बी० ए०

बगल में एक टूटी हुई छतरी दबाये नौ बज के दस मिनट पर कमलेश्वर प्रसाद ने दफ्तर में प्रवेश किया। अपनी सीट पर पहुंच कर उसने छतरी एक किनारे दीवार के सहारे खड़ी करदी, कोट खूंटी पर टांग दिया और जाकर हाजिरी के रजिस्टर में हस्ताक्षर कर दिया। फिर सीट पर वापस आकर उसने अपने इर्द-गिर्द एक नजर डाली। दफ्तर प्रायः खाली है। केवल दो-चार क्लर्क आये हैं, जो उसी की तरह कार्यभार से दबे हुए हैं और दफ्तर के समय से पहले आकर और पीछे जाकर बढ़े हुए काम को पूरा करने में व्यस्त रहते हैं। अन्य क्लर्क दस बजे आयेंगे, जो दफ्तर खुलने का ठीक समय है। वह एक घण्टा पहले आगया है, क्योंकि उसे एक आवश्यक स्टेटमेंट तैयार करना है।

कुछ क्लर्क ऐसे भी हैं जो नित्य देर करके दफ्तर आते हैं और काम भी बराये नाम करते हैं तबीयत हुई तो थोड़ा सा काम निकाल दिया, वरना इधर-उधर मटर-गश्ती करते फिरे। कुछ देर इससे बातें की कुछ देर उसके पास जा खड़े हुए। बस इसी तरह सारा समय निकाल देते हैं। इतना होने पर भी उनसे कोई कुछ नहीं कहता क्योंकि वे अफसरों के कृपापात्र हैं—जी हजूरी में सबसे आगे और अफसरों का निजी काम करने में सदैव तत्पर। कमलेश्वर जब भी उन्हें देखता है तो उसका जी जल उठता है। एक वे हैं, जो काम के नाम सदा आराम करते हैं और एक वह जिसे सुबह से शाम तक कागजों से सिर उठाने की फुर्सत नहीं मिलती। काम का उसके पास यह हाल है कि उसकी टोकरियां सदैव कागजों से भरी रहती हैं। चापलूसी करना उसे आता नहीं। बड़े बाबू के बच्चों को मुफ्त पढ़ाने से उसने कई बार इनकार कर दिया है। इसलिए उनकी उसपर नाराजगी है और सारा अतिरिक्त काम उसी के सिर मढ़ा जाता है। वह इनकार करे तो जाये कहां और खाये क्या और बाल-बच्चों का भरण पोषण करे तो कैसे करे? नौकरी का मिलना आजकल इतना आसान नहीं की एक जगह से छुटी और तुरन्त दूसरी जगह लग गई, इसलिए यहीं पड़ा

रहना स्वाभाविक ही उसके काम में देरी लाती है और गलतियां भी। फलस्वरूप कोई दिन भी ऐसा नहीं जाता, जिस दिन उसे बड़े बाबू के कोप का भाजन न बनना पड़ता हो।

मेज पर पड़ी हुई टोकरियों के कागजों को उलट पुलट कर देख लेने के बाद वह स्टेटमेंट तैयार करने में व्यस्त हो गया।

ठीक दस बजे उसका पड़ौसी हरिप्रसाद आया। बड़ा सहृदय व्यक्ति है। कमलेश्वर से भाई जैसा स्नेह रखता है और जबतब उसकी सहायता कर देता है—उलझन के मामले सुलझा देता है। उससे पहले का नौकर है। दफ्तर के काम में भी काफी होशियार है। कुर्सी पर बैठते हुए उसने प्रश्न किया—'कहो भाई कमलेश्वर, आज क्या हाल है।

'देख तो रहे हो पिसा जा रहा हूं।' कमलेश्वर ने जवाब दिया।

'वह कोई नई बात नहीं, जिसके बारे में मुझे जिज्ञासा हो। मैं तो तुम्हारी पलटन का हाल-चाल दरियाफ्त कर रहा हूं।'

'पलटन का?'

'जी!'

'तो सुनिये। पलटन का बड़ा सिपाही राम कल बांह तोड़ लाया। छोटा कृष्ण कुत्ता खांसी से परेशान है। गोद का बच्चा ज्वर-ग्रस्त है।' कमलेश्वर के बच्चों में प्रायः हर साल एक की वृद्धि हो जाती है। इसीसे उन्हें वह अपनी बढ़ती हुई फौज कहा करता है।

'तब तो खाना-वाना......

'नहीं हुआ।' बीच ही में बात काट कर कमलेश्वर ने उत्तर दिया 'होता भी कैसे? मरीजों की परिचर्या से श्रीमतीजी को इतना अवकाश ही कहां मिलता कि भोजन तैयार करतीं। मैं समझूंगा कि इस महिने में तीन एकादशी हो गईं।'

हरिप्रसाद का मन अपने मित्र के प्रति कोमल हो गया। बिना भोजन के बेचारा शाम तक काम कैसे करेगा? उसने कहा — कोई हर्ज नहीं। तीन बजे तो मेरा नाश्ता आ ही जायेगा। आज हम दोनों साथ ही खायेंगे। मगर उस समय तक जरा पेट पर जब्र करना होगा।'

'वह तो होगा ही। मैं नाहीं करूं भी तो तुम मानोगे कब। पर आखिर कब तक तुम अपना पेट काट कर मेरा उदर भरते रहोगे?'

'जब तक तुम यहां से निकाल न दिये जाओगे।' हरिप्रसाद ने किंचित हास्य के साथ उत्तर दिया।

'वह दिन भी दूर नहीं जान पड़ता हरि! देख तो रहे हो, रोज फटकार पड़ती है। कई वार वार्निंग तक मिल चुकी है। ऐसी परिस्थिति में मैं यहां टिका हुआ हूं यही एक आश्चर्य है।'

'वार्निंग की भी तुमने एक ही कही।

यह तो यहां का रोजमर्रा का किस्सा है। ऐसी-ऐसी चेतावनियों का जिक्र करने लगे तो बस हो चुका।'

'तुम तो ऐसा कहोगे ही। नौकरी पक्की हो गई है न ! मैं तो अभी अस्थायी ही हूं। चाहें तो ये लोग मुझे चौबीस घण्टे का नोटिस देकर कल निकाल सकते हैं।'

इतना कह कर कमलेश्वर फिर अपने काम में जुट गया। हरिप्रसाद भी एक फाइल के पन्ने उलटने लगा।

× × ×

करीब एक बजे बड़े साहब के चपरासी ने कमलेश्वर से आकर कहा — 'आपको साहब बुलाते हैं।'

'मुझे ! — तुम शायद भूलते हो किसी और बाबू को बुलाया होगा।'

'नहीं, साहब आपको ही बुलाते हैं।'

कोट पहन कर कमलेश्वर चुपचाप उसके पीछे हो लिया। करीब २० मिनट बाद जब वह साहब के पास से लौटा तो उसका चेहरा उदास हो रहा था और उस पर ग्लानि का भाव स्पष्ट झलक रहा था। अपनी कुर्सी पर धम्म से बैठकर उसने दोनों हाथों से अपनी आंखें बन्द कर लीं, जैसे किसी अप्रिय दृश्य को वह अपनी आंखों से मिटाने की कोशिश कर रहा हो।

'क्या बात थी कमलेश्वर ?' हरिप्रसाद ने पूछा। पास के दो-चार दूसरे क्लर्क भी उसके निकट आ गये।

'वही परसों वाला किस्सा था।' कमलेश्वर ने आंखों पर से अपने हाथ हटाते हुए कहा — 'बड़े बाबू की मेहरबानी से बड़े साहब तक पहुंच गया। मैं मानता हूं कि मुझे कुछ तैश आ गया था, जिससे मेरे मुंह से कुछ सख्त अलफाज निकल गये। पर तुम सभी तो गवाह हो, मैंने पीछे से बड़े बाबू से माफी मांग ली थी। फिर भी उनकी तसल्ली नहीं हुई और उन्होंने साहब से मेरी शिकायत कर ही दी। तुम तो जानते ही हो साहब कितना उनके कहने में है। उसने मुझे केवल डांटा ही नहीं, बल्कि गालियां दीं — गालियां, जो एक शरीफ आदमी के लिए मार से अधिक चुटीली होती हैं। मैं खड़ा-खड़ा सुनता रहा। मैं गुलाम हूं। मेरा खून सफेद हो गया है। वह अपमान से उबला नहीं। ओह ! मुझे आज अपने ऊपर जितनी ग्लानि हो रही है उतनी जिन्दगी में कभी नहीं हुई। एक तरह से साहब ने आज मुझे अन्तिम चेतावनी दे दी है। कहा है, दूसरी शिकायत होने पर मुझे नौकरी से हटा दिया जायेगा।'

हरिप्रसाद ने हंसकर कहा — 'बस इतने से ही घबरा गये। साहब से टक्कर होने का पहला ही मौका है शायद। धीरे-धीरे आदी हो जाओगे तो साहब की गालियां पुष्प-वर्षा के समान मालूम होंगी। अब शान्त होकर अपना काम करो।'

'अब शान्ति कहां ! बर्दाश्त की भी एक हद होती है। मैं इस नौकरी से भी

मैट्रिक में वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ और उसके सपनों का रंग और गहरा हो गया। उसके कितने ही सहपाठियों ने मैट्रिक पास करके नौकरी की तलाश आरम्भ कर दी। उसने कहा — 'मैं अभी आगे पढ़ूँगा और बी० ए० पास करके किसी सरकारी प्रतियोगिता में बैठूंगा।'

उसने कालेज में प्रवेश किया। बाप ने तन काट कर उसे पढ़ाया। उसने भी जी लगाकर पढ़ा। वह आई० सी० एस० होना चाहता था। उसका लक्ष्य ऊंचा था, पर उसे विश्वास था कि वह अवश्य उसे हासिल करेगा। वह अक्सर अपनी पत्नी से कहता — 'बस कुछ दिनों की और देर है। इसके बाद हमारा जीवन बड़े आराम और शान से बीतेगा। रहने को ठाटदार बंगला होगा। काम करने के लिए दर्जनों चपरासी। घूमने के लिए शानदार मोटर।'

पर दैव की गति किसने जानी है। जब वह बी. ए. के प्रथम वर्ष में था एक एक करके उसकी दादी, माता और पिता इस लोक से चल बसे और वह इस सुविस्तृत संसार में अकेला रह गया। माता पिता के सपने तो अधूरे ही रहे, पर मृत्यु से पूर्व उसकी दादी ने प्रपौत्र का मुख जरूर देख लिया। वैसे तो मां और दादी के मरने का भी उसे कम शोक नहीं हुआ, पर पिता की मृत्यु ने उसे बड़ा गहरा आघात पहुंचाया। अपने जिस पिता को वह अच्छी हैसियत वाला समझता था और जिनकी बदौलत वह कालेज में एक शानदार जिंदगी बसर कर रहा था, उनकी मृत्यु होने पर उसे ज्ञात हुआ कि सेविंग्स बैंक में दो सौ रुपये की पूंजी के अतिरिक्त वह उसके लिए और कुछ भी नहीं छोड़ गये थे। मां के गहने एक एक कर उसकी पढ़ाई के व्यय में पहले ही शेष हो चुके थे। पत्नी के गहनों की मालियत कुछ सौ से अधिक न थी। इन साधनों के मुकाबले में था उसके सामने बी. ए. की पढ़ाई का एक साल और पत्नी और एक बच्चे तथा अपने जीवन-निर्वाह का प्रश्न। मजबूरन उसे पढ़ाई को नमस्कार कर नौकरी की तलाश करनी पड़ी।

एक-एक कर याद आये उसे वे दिन जब एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास वह छोटी से छोटी नौकरी की तलाश में दौड़ता फिरा था। अन्त में बड़ी दौड़ धूप और न जाने कितने लोगों की खुशामद-दरामद के पश्चात् उसे इस दफ्तर में नौकरी मिली थी — चालीस रुपये मासिक की। अब उसे पचास मिल रहे हैं और उसके तीन बच्चे हैं।

उसके पिता, माता और दादी तीनों की अभिलाषा थी कि उनका लड़का बड़ा होकर उच्च पद पर पहुंचे। वह खुद भी बड़ा आदमी बनना चाहता था और शानदार जिन्दगी व्यतीत करने का अभिलाषी था। पर बना क्या — एक मामूली क्लर्क, जिसकी न कोई स्थिति है और न कद्र। बस सुबह से शाम तक हल के बैल

वाले उसे अपने आप नौकरी से अलग कर देंगे। इस विचार से उसे बड़ी शांति मिली।

वह जब घर पहुंचा तो पत्नी द्वार पर ही उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसके चेहरे से घबराहट टपक रही थी।

'तुम आगये!' उसने कहा — 'मैं इन्तजार करते-करते थक गई। जरा देखो तो चलकर। मुन्ने का ज्वर आज दोपहर से बहुत बढ़ गया है। बड़ा बेचैन है। पहले उसे डाक्टर को दिखलाओ फिर खाना, खाना।'

खाना। — उसकी पत्नी को क्या मालूम कि वह भूख-प्यास सब दफ्तर में ही छोड़ आया है। पर इस नई समस्या में वह दफ्तर की समस्या भूल गया। वह दौड़कर भीतर पहुंचा। बच्चे का हाथ अपने हाथ में लेकर देखा तो ज्वर सचमुच बहुत तेज हो रहा था। वह उसे गोद में उठा, दौड़ा-दौड़ा डाक्टर के पास गया और उसे दिखा कर दवा ले आया। घबराने जैसी बात नहीं थी। डाक्टर ने कहा

कितने परावलंबी! उसने सोचा, वह अपने साथ ही इतने निरीह प्राणियों की भी हत्या का गुरुतर अपराध करने जा रहा है। अपने धार्मिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्व से किनारा कर इतने बड़े पाप का भागी बनने जा रहा है वह! उसे अपने पिता की याद हो आई, जिन्होंने उसे पढ़ा लिखा कर योग्य बनाने में अपना सब कुछ निछावर कर दिया था। उन्होंने खुब फटे से फटे कपड़े पहने पर उसे एक से एक मूल्यवान सूट पहनायें। खुद रूखा सूखा खाकर उसके लिए खालिस दूध और घी का प्रबन्ध किया। लोग जब उनसे कहते कि यह क्या मूर्खता कर रहे हो, कुछ तो वृद्धावस्था के लिए संचय करो, तो वे मुस्करा कर जवाब देते — 'मेरी संपत्ति कमलेश्वर है। अभी जो लगा रहा हूं समय आने पर सब व्याज सहित वसूल हो जायेगा। एक पूंजी गवांकर दूसरी बढ़ा रहा हूं।'

कितने वीर और साहसी थे वे, और उन्हीं की सन्तान होकर कितना कायर और नीच है वह! बाधाओं से घबरा कर त्यागपत्र देने की सोचता है। मृत्यु का आह्वान करने को तत्पर है! नहीं, वह ऐसा कदापि नहीं कर सकता — नहीं करेगा। वह जियेगा और अपने पिता के अधूरे कार्य को अपने हाथों द्वारा पूरा करेगा। जो उसके पिता का कर्तव्य वही उसका भी कर्तव्य है। उन्हाने उसे योग्य बनाने के लिए अपनी बलि दे दी, वह अपने पुत्रों को योग्य बनाने के लिए अपना मान, सुख सब कुछ निछावर कर देगा।

'खाना परोसो' उसने अपनी पत्नी से कहा और ऐसे सुनहरे सपने देखने में तल्लीन हो गया, जो उसके पिता, मां और दादी के सपनों से बहुत कुछ मिलते जुलते थे।

हृदय नारायण सरीन

" मैं उनकी न हुई "

[श्री हृदयनारायण सरीन बी० ए०]

अजमेर काफी बड़ा और अच्छा शहर है। लाहौर जैसा तो नहीं, जहां रोज़ ही सड़कें शोरोगुल और मौज-बहार के दृश्यों से गुलज़ार रहा करती हैं, मगर हां, उर्स के अवसर पर इसकी रौनक सचमुच बहुत बढ़ जाती है। हिन्दुस्तान के हर हिस्से के लोग इस मौके पर यहां आते हैं। कुछ ख्वाजा की ज़ियारत करने, कुछ व्यापार करने; पर अधिकांश सैर-सपाटा करने ही आते हैं। धानमंडी और नलाबाजार की लम्बी सड़कों के दोनों तरफ भांति-भांति की दूकानें लग जाती हैं और रात के समय तो रोशनी की चमक-दमक और आदमियों की आमद-रफ्त के कारण वहां मेले पर एक अजीब दिलचस्प समा रहता है। दुकानों के उपर के कोठे आबाद हो जाते हैं और रात भर उनमें से आने वाली नाच और गानों की मधुर स्वर-लहरियां मार्ग चलने वालों को मस्त बनाती रहती हैं। प्रायः एक महीने तक यही दशा रहती है। इसके बाद यह प्राचीन और ऐतिहासिक नगर फिर पहले जैसी हालत पर आ जाता है।

हमारा कोठा बाजार के मध्य भाग में था। बड़ा साफ-सुथरा और आदम-कद आईनों और तरह-तरह के खूबसूरत चित्रों से सुसज्जित। उसमें एक साथ ५०-६० आदमी बैठ सकते थे। मैं सन्ध्या से ही सजधज कर झरोखे में आ बैठती थी। मेरे पास हुस्न था और सुरीला गला भी। नाचने में तो मुझे कमाल हासिल था। मुझे यकीन था कि जिस तरह मैंने लाहौर के नामी-गरामी व्यक्तियों को विमोहित कर रक्खा था, उसी तरह यहां भी मैं अपने फन से धन और यश दोनों प्राप्त कर लूंगी। हुआ भी यही। शाम से ही जो सौन्दर्य के पुजारियों का आगमन हमारे कोठे पर

मैंने एक उड़ती हुई नजर उस पर डाली। नौजवान खूबसूरत और शरीर से हृष्ट-पुष्ट था। नजर का एक पैना तीर उस पर फेंक कर मैं अन्य लोगों को अपने हाव-भाव से विमोहित करने में तल्लीन हो गई। वह नौजवान करीब दो घण्टे तक वहां रहा और इस बीच उसने एक-एक, दो-दो और पांच-पांच करके पचासों रुपये मुझे दे डाले। एक बात मैंने गौर की। जबतक वह बैठा रहा, उसकी दृष्टि मेरी ओर ही लगी रही। मेरे नाच के साथ-साथ उसकी नजर भी घूमती थी। दो घण्टे बाद उसने अपनी कलाई पर बंधी हुई घड़ी पर एक हलकी सी नजर डाली और फिर जैसे निःशब्द वह वहां आकर बैठ गया था वैसे ही उठकर चला गया। उसके जाते ही मुझे ऐसा जान पड़ा मानों आदमियों से भरा हुआ कमरा एकाएक वीरान हो गया हो। इसके बाद कितने ही आदमी आये और मैं सबकी खुशी के लिए नाची, पर मन में मेरे न जाने कैसी एक तरह की उदासी सी बनी रही। मेरी समझ में ही नहीं आ रहा था कि अचानक मुझे यह क्या हो गया? आज तक न जाने कितने ही युवक मेरे कोठे पर आ चुके थे, एक से एक बढ़कर खूबसूरत और पैसे वाले; पर कभी भी तो मेरे मन की ऐसी हालत नहीं हुई थी। शायद इसका कारण उसकी एकाग्रता या तन्मयता हो। जो भी हो जब मैं सोने के लिए गई, उस समय मेरे मन में उसी का ध्यान और मेरी नजरों में उसी की सूरत घूम रही थी।

× × ×

वह दूसरे दिन भी उसी समय आया; तीसरे दिन भी और चौथे दिन भी। वह नियमित रूप से उसी किनारे पर बैठता और जब तक बैठा रहता, एकाग्र दृष्टि से मेरी तरफ ही देखा करता। रुपये बीच-बीच में उसी तरह देता जाता, पर मुख से एक शब्द भी न बोलता। मैं हैरान थी। मेरी अभिभाविका भी हैरत में थी। उसने तो कई बार अपनी तरफ से बात चलाने की चेष्टा भी की, पर वह 'हां' 'ना' या केवल गर्दन के इशारे से ही उनकी बातों का जबाव देता। जब उससे कोई बात करता तो मुझे ऐसा जान पड़ता मानो उसे उत्तर देने में बड़ा कष्ट होता हो। वह मौन रहना चाहता था और जब तक वह वहां बैठा रहे, मेरी तरफ से एक क्षण के लिए भी अपनी दृष्टि हटाना उसे पसंद न था।

मैं भी अनजाने ही उसकी ओर बुरी तरह से खिंच गई। कैसे न खिंचती उसकी तन्मयता और उदासी भरी हुई दृष्टि ने मुझे पागल बना दिया था। हर घड़ी मेरे मन में उसका ही ध्यान बना रहता। अभिभाविका कहती कि तुझे यह क्या होता जा रहा है? मैं भी सोचती कि मुझे यह क्या हो गया है? हमारा धर्म पैसा है, मुहब्बत नहीं; और मैं धीरे-धीरे मुहब्बत की जंजीरों में जकड़ती जा रही थी, जो एक वेश्या के लिए गलत

राह है। मैं रोज निश्चय करती कि आज ऐसा न होने दूंगी, पर जैसे ही उससे आंखें चार होतीं, मेरे सारे मनसूबे हवा हो जाते। आखिर एक दिन मुझसे न रहा गया और जब वह उठकर जाने लगा तो मैं उसके साथ दरवाजे तक गई तथा हिम्मत करके मैंने कह ही तो डाला—

'क्या आप कल दिन में मेरे गरीब-खाने पर तशरीफ लाने की कृपा करेंगे?' मेरा स्वर कांप रहा था और एक-एक शब्द अटक-अटक कर निकल रहा था।

उसने प्रश्न-सूचक लहजे में कहा—'जी?'

शायद उसने सुना ही नहीं। जब मैं उससे कह रही थी मैं खुद भी अपनी आवाज नहीं सुन पा रही थी। मैंने अपनी प्रार्थना दुहराई।

कुछ क्षण तक वह चुप रहा, फिर उसने पूछा— 'किस समय आऊं?'

'जब आपका मिजाज चाहे।' मैंने उत्तर दिया।

'दोपहर दो बजे?' उसने पूछा।

'ठीक है, 'मैंने उत्तर दिया' मगर देखिये आइयेगा जरूर। मैं आपका इन्तजार करूंगी।'

इस पर उसने कुछ न कहा और धीरे-धीरे सीढ़ियों से नीचे उतर गया।

उस रात जब मैं सोने के लिए गई तो एक प्रकार की मादक खुशी से मेरा मन ओत प्रोत हो रहा था। बड़ी देर तक मैं आसमान में खिले हुए तारों को देखती रही।

दिन के समय हम बनाव-सिंगार नहीं किया करतीं, पर उस दिन मैंने विशेष रूप से अपने को अधिक सुन्दर बनाने की कोशिश की।

ठीक दो बजे वह कमरे में दाखिल हुआ। उसकी वेष-भूषा में कोई परिवर्तन नहीं था, मगर दिन के उजाले में मुझे वह अधिक आकर्षक जान पड़ा। उसके मुख पर पवित्रता का एक अजीब तेज झलक रहा था। मैंने उसे पास ही बैठने को कहा और शर्बत के लिए पूछा, मगर उसने इनकार कर दिया।

'फर्माइये, मुझे आपने किस लिए याद किया है?' उसने पूछा।

'आज एक सप्ताह से देख रही हूं। आप रोज आते हैं, डेढ़-दो घण्टे बैठते हैं— बिलकुल खामोश—और फिर जैसे आते हैं वैसे ही चले जाते हैं। क्या मैं जान सकती हूं कि क्यों?' मैंने जवाब में पूछा।

'मगर आप जानकर क्या करेंगी' उसने पूछा।

'आपने मेरे मन में एक विचित्र कौतूहल पैदा कर दिया है। मैं मन शांत करना चाहती हूं।' मैंने जवाब दिया।

'मगर इससे फायदा? आपके लिऐ तो इतना ही काफी है कि मैं भी आपके यहां आने वाले अनेकों में से एक हूं।' उसने कहा।

'मैं भी तो यही कहती हूं कि आप अनेकों में से एक हैं पर उन सबसे जुदा हैं मैं रोज़ आपको देखती हूं और अनुभव करती हूं कि आप जैसे दर तक-

लीफ में हों। आपके मन के भीतर कोई बड़ा राज छिपा है। अगर आपको कोई एतराज न हो तो मुझे बतलाने की मेहरबानी करें। दुःख कहने से कम ही होता है।'

'तो आप सब कुछ जानना ही चाहती हैं। मैं भी देखता हूं मैं आप से सब कुछ कहे बिना भी नहीं रह सकता जो राजघर वालों से छिपा है, तथा सब से गुप्त है वह मैं आपको बता कर आपको हमराज बनाने को न जाने क्यों मेरा भी जी चाहता है। उस वक्त जब मैं इस राह से गुजर रहा था, मेरी नजर अचानक आप पर पड़ गई। मैं आगे बढ़ा, पर तबियत न मानी और पलट कर मैंने फिर आपकी तरफ देखा तो एकाएक जैसे कोई मेरे सोये हुये स्मृति के तारों को छेड़ गया। एक बीती हुई बात याद आ गई। मन के एक कोने में सोई हुई स्मृति जाग पड़ी। मैं बकशर हो गया, बेकाबू हो गया, और मेरे पैर बरबस मुझे आपके पास ले आये। मन कहता था कि तू कहां जा रहा है? एक एक वैश्या के यहां? पर उसके भीतर बसने वाली याद कह रही थी कि नहीं तू एक पवित्र स्थान में जा रहा है, जहां तुझे राहत मिलेगी और सचमुच आपके सान्निध्य में मुझे उस सुख का आभास मिला जो आज से छः वर्ष पूर्व मुझे मेरे मन की देवी सुशीला रानी के दर्शनों से प्राप्त होता था।' कहते-कहते वह मौन हो गया और उसने अपनी आंखें बन्द करलीं।

मैं चौंक पड़ी। इस नाम ने मुझे मेरे अतीत की याद दिला दी। मेरे मुख से निकल पड़ा— 'सुशीला रानी।'

'यह नाम आपको कैसे मालूम हुआ?'

'अभी आपने ही तो यह नाम लिया था।' मैंने संभल कर कहा।

'मैंने? — देखता हूं कि दिल की बेकरारी में मैंने अपना कीमती राज आपके सम्मुख खोल ही दिया तो फिर और भी सुन लीजिये। मैं उसे प्यार किया था। वह हमारे कालेज में देहरादून से आकर फर्स्ट ईयर में भरती हुई थी। मैं बी०ए० के प्रथम वर्ष में था। उसे देख कर मैं अपना दिल खो बैठा। ऐसा लगने लगा मानो जन्म-जन्मांतर का मेरा उसका संबन्ध हो। तभी निश्चय कर लिया की अगर कोई मेरी जीवन-संगिनी ही। मैं मन ही मन उसकी उसे चाहने लगा। मैं रात-दिन उसके ही ध्यान में डूबा रहता और न जाने कितने आकाश- महल रोज बनाता और बिगाड़ता। आपको क्या बताऊं कितने स्वर्गीय आनन्द में उस समय डूबा रहता था।

आपका उससे विवाह हुआ?'

विवाह!' एक सूखी हंसी हंसते हुए उसने उत्तर दिया—'विवाह तो दूर की बात है, मैं अपने कालेज के दो साल के जीवन में उससे एक बात भी न कर सका। पहले तो हिम्मत ही नहीं हुई पर यदि कभी साहस बटोरता भी,

वह मेरी ओर मुखातिब ही नहीं होती। उसने तो कालेज में अपना एक अलग सा नियम कर लिया था। धनी, खानदान की पुत्री, संगीत, नृत्य और नाट्य-कला में दक्ष। कुछ ही समय में धनी-मानी, शान से रहने वाले छात्रों के दायरे ने उसे अपने में सीमित कर लिया। मुझ जैसे साधारण हैसियत और मामूली हिंदुस्तानी लिबास में रहने वाले व्यक्ति की ओर दृष्टि-निक्षेप करने का उसे अवकाश ही कहां था। मैं तो उसे दूर से देखकर ही संतोष कर लेता था।'

'फिर ?'

'फिर क्या, जैसे अचानक वह मेरे जीवन में आई थी, वैसे ही एकाएक वह उसमें से चली गई। एक दिन सुना कि वह कालेज के शौकीन विद्यार्थी के साथ भाग गई। आज इस बात को छः साल का अर्सा हो गया, पर उसकी याद मेरे मन में अब तक मौजूद है। सच पूछिये तो उसी के सहारे मैं जी रही हूं। पर ऐसे कब तक चलेगा ? मन की शांति के लिये मैं कहां कहां नहीं भटका हूं, पर आज आपके संसर्ग में मुझे थोड़ी राहत नसीब हुई है। शायद इसकी वजह यह हो कि आपकी सूरत मेरे मन की देवी से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

'आपने शादी की ?'

'शादी ?' उसने फिर सूखी हंसी हंस कर कहा— 'शादी करके एक अबला के शाप का भागी बनने की सामर्थ मुझ में नहीं है, मिस हसीना ! ऐसा जीवन जिसकी बुनियाद ही खोखली हो गई हो, कितने दिन और टिकेगा, यह नहीं कहा जा सकता। फिर अपने साथ-साथ एक अबला का जीवन और बरबाद क्यों करूं ?'

वह चुप होकर भूमि की तरफ देखने लगा। मेरी आंखें उस समय अश्रु पूर्ण थीं और मन न जाने कैसा हो रहा था। उसे क्या मालूम कि वह मेरे सामने बैठा हुआ मुझ अभागिनी की ही कहानी कह रहा था। मेरी नजरों में मेरा विगत वर्षों का जीवन नाच गया। मुझे याद आया कि मैं इस युवक को अक्सर कालेज में देखा करती थी। यह सबकी नजरें बचाकर सदा कैसी हसरतभरी निगाहों से मेरी ओर देखा करता था ! पर मैं एक बार भी उसकी ओर आकर्षित नहीं हुई। काश मुझ में उस समय अक्ल होती और मैं खरे खोटे की पहचान कर सकती। सोना मेरे पैरों में पड़ा था, पर मैंने उसे ठुकराकर कोयले को अपने सीने से लगाया, जिसने मेरी जिन्दगी ही काली कर दी।

'नहीं, नहीं, आप ऐसा ख्याल न करें। मैं बिल्कुल ठीक हूं। बात यह हुई कि आपकी कहानी सुनकर मुझे अपनी एक दुःखिनी बहिन की याद आ गई। वह भी कालेज में पढ़ती थी और मुमकिन है कि उसी कालेज में, जिसका आपने जिक्र किया है। वह भी संगीत, नृत्य और नाट्यकलाओं में दखल रखती थी। कालेज के सफेदपोश बदमाश उसके प्रशंसक थे। वह हमेशा उनसे ही

घिरी रहती थी। ऐसे ही एक व्यक्ति से उसकी अधिक घनिष्ठता हो गई। वह इतनी बढ़ी कि दोनों की चोली-दामन का साथ हो गया। क्या कालेज में, और क्या बाहर, दोनों सदा एक साथ ही दिखाई पड़ते। उसने उसे सब्ज बाग दिखाने शुरू किये। वह उसे अपना ईश्वर समझने लगी। कालेज में धीरे-धीरे उसकी बदनामी फैलने लगी, परन्तु उसने इसकी कोई परवाह न की और एक दिन उसके कहे में आकर उसके साथ भाग निकली। कुछ समय दोनों का ऐश में कटा। पर भौंरा क्या कभी एक फूल का होकर रहा है? रस चूसकर वह लम्पट उस बेचारी नारी की टूटी हुई किश्ती को मझधार में छोड़कर अपनी राह चला गया। आप उस समय की उसकी बेबसी का अंदाजा नहीं लगा सकते। उसे हर तरफ अंधेरा ही अन्धेरा नजर आने लगा। आखिरकार—

'आप चुप क्यों हो गईं? आखिरकार क्या हुआ?'

'आपकी उस बहिन का नाम जान सकता हूं?'

'नाम? नाम तो उसका सुशीला रानी था।'

'सुशीला रानी! तो आप अब तक मुझे मेरी सुशीला रानी का ही हाल सुना रही थी। आपको उनका पता अवश्य मालूम होगा। बताइये, वह कहां मिल सकती हैं? उन्होंने अब तक नर्क देखा है, मैं उन्हें अपने प्रेम से सच्चे स्वर्ग के दर्शन कराऊंगा। वह तब भी मेरे लिए देवी थीं और अब भी देवी ही हैं।'

इसके बाद वह एक क्षण भी मेरे पास न ठहरा। शायद अपनी बेचैनी छिपाने के लिए उसने वहां से चला जाना ही उचित समझा। मैं कुछ समय तक तो वहीं किंकर्तव्य-विमूढ़ सी बैठी रही। इसके बाद पलंग पर औंधे मुंह जा पड़ी। जो आंसू मैंने बरबस पलकों की कोरों में रोक रक्खे थे, एक दम से बरस पड़े।

× × ×

आज वह फिर आयेगा और आनन्द से नाचता हुआ, क्योंकि उसे अपनी प्रेयसी का पता मुझ से प्राप्त होगा। मगर क्या मैं उसे उसका पता बता सकूंगी? सारी रात मैं इसी उधेड़-बुन में रही हूं। मेरे एक ओर स्वर्ग और दूसरी ओर नर्क था। एक ओर सुख का सुन्दर उपवन है और दूसरी ओर दुःख का बीहड़ वन। जरा हाथ बढ़ाते ही मैं स्वर्ग को अपना बना सकती हूं, पर क्या मैं वैसा कर सकूंगी? वे जो कुछ कह गये हैं कर डालेंगे, इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है। उनका प्रेम उस चरम-सीमा को पहुंच गया है, जहां प्रियपात्र के गुण-अवगुण का विभाजन प्रेमी की शक्ति से परे होता है। वह मुझे उस दृष्टि से देखने लगे हैं, जिससे केवल ईश्वर देखा जाता है। मेरे मन में बड़ा लालच होता है कि उनकी हो जाऊं — कह दूं कि मैं उनकी सुशीला रानी हूं। कल ही मैं अपना यह भेद उनके सामने खोल देती, पर न जाने किस पवित्र शक्ति ने मुझे ऐसा करने से रोक दिया। वही

पवित्र शक्ति अब भी मुझ से कह रही है कि अभागिनी, ऐसे देवता जैसे व्यक्ति की झूठे पुष्प से सेवा न कर। मैं उन्हें अपना राज़ हरगिज़ नहीं बता सकती। मैंने अपना जीवन तो नष्ट कर ही डाला है, अब उनकी जिन्दगी बर्बाद करने का पातक मैं सिर पर लेना नहीं चाहती। बहुत कुछ सोच-विचार करने के बाद मैं इसी पुण्य निश्चय पर पहुंची हूं और इसी पर दृढ़ रहूंगी।

एक खत मैंने लिख कर रख दिया है। यह खत जब मकान का नौकर उनके हाथ में देगा, उस समय मैं उनसे बहुत दूर होऊंगी। मेरी अभिभाविका अभी अजमेर छोड़ कर जाने के लिए तैयार नहीं है। मेला तो अभी चला ही है और कमाई भी अच्छी हो रही है। मगर मैंने जो जाने की जिद पकड़ी, सो उनकी गालियां और जली-कटी सुनकर भी नहीं छोड़ी। वह जानती है कि मैं उनकी लौंडी नहीं हूं और अधिक किस्सा बढ़ने पर उनसे किनारा करने के लिए भी तैयार हो सकती हूं। लाचार उन्हें राजी होना पड़ा है और आज रात भी डाक से हम यहां से रवाना हो जायेंगे।

खत मुझे अक्षरशः याद है। उसमें मैंने लिखा है :—

'जनाबमन।

तस्लीम। आपने कल मुझसे सुशीला रानी का पता पूछा था। चाहती तो उसी समय कह सकती थी कि वह अभागिनी आपके सामने ही बैठी हुई है, पर वैसा करने के पूर्व मुझे बहुत सी बातें सोचनी थीं—आप की अपनी भी, सच पूछिये तो आपके निष्कपट और अविचल प्रेम ने ही उस समय जब्त करने की शक्ति मुझे दी। मैं जो कुछ बन गई हूं, वह आपने देख ही लिया—एक घृणित वेश्या, जो हर अदना और आला-इन्सान के मनोरंजन का साधन है। जरा से लालच और झूठी प्रशंसाओं ने मुझे कहां से कहां पहुंचा दिया। नारी का जन्म होता है देवी बनने के लिए। मैं भी देवी बनना चाहती थी।

दानवी देवता है [illegible] होती। अपने स्वर्ग के लिए आपको नर्क में नहीं ला सकती। अपना सब कुछ गंवाकर आपको भी उसी धरातल पर लाने के पाप की भागी मैं हरगिज नहीं बनूंगी। मन बड़ा निर्बल होता है। आपको सामने पाकर कहीं फिसल न जाऊं, इसलिए आप से दूर भाग रही हूं। यह खत जब आपको

मिलेगा उस समय मैं आपसे बहुत दूर होऊंगी। आप मुझे एक नारकीय वस्तु समझ कर भूल जाने का प्रयत्न कीजियेगा। मैं कोशिश करूंगी कि आपकी पवित्र याद मुझे दानवी से देवी का दर्जा प्राप्त करने में समर्थ करे। यदि कभी वैसी बन सकी तो आपकी पद-सेवा व सौभाग्य अवश्य प्राप्त करूंगी।

तब तक के लिए-

हसीना

× × ×

रात के ग्यारह बजे हैं। इस समय मैं गाड़ी में हूं— अजमेर से बहुत दूर मेरा खत उन्हें नौकर ने दे दिया होगा मैं कल्पना करना चाहती हूं कि खत पढ़ कर उनकी क्या दशा हुई होगी उनका स्मरण आते ही मेरे नैन भर आते हैं। आह! कितनी खुश-खुश मैं अजमेर आई थी, पर यहां से एक दर्द लेकर जा रही हूं, जो आजीवन मेरा साथी रहेगा।

[३० दिसम्बर सन् १९४५]

कैसी उमंग

कैसी उमंग कैसी उमंग!

हैं बढ़े जारहे मिल-जुल कर, आबाल-वृद्ध सब संग-संग ॥
सब के मन में है एक चाह, सबने पकड़ी है एक राह।
पशुतामय शासन के विरुद्ध, करना है सब को आज जंग ॥
जो पग आगे है बढ़ा दिया, पीछे हरगिज वह हटे नहीं।
सब का नारा है आज यही, हो भले हमारा अङ्ग-भङ्ग ॥
रुकना कैसा, डरना कैसा, डर कर पीछे हटना कैसा।
सब बढ़े चलो, सब बढ़े चलो, बढ़तीं जैसे सागर-तरङ्ग ॥

— हृदय नारायण

प्रतियोगिता का फल

[श्री हृदयनारायण सरीन, बी० ए०]

कितने ही साप्ताहिक और मासिक पत्रों के प्रसिद्ध कहानी लेखक श्रीयुत सुरेशचन्द्र बी० ए०, साहित्याचार्य के सामने एक मासिक-पत्र खुला हुआ रक्खा था, पर उसका जो पृष्ठ उनके सम्मुख था और जिस पर वह एकाग्र दृष्टि से देख रहे थे, उस पर कोई लेख, कहानी अथवा कविता नहीं थी बल्कि था एक विज्ञापन। मोटे-मोटे अक्षरों में बड़े आकर्षक ढङ्ग से छपा हुआ।

मनहर पिक्चर्स का अभूतपूर्व आयोजन
होनहार कहानी लेखकों के लिये स्वर्ण संयोग
चित्रपट कहानी प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार ५०००) द्वितीय पुरस्कार ३०००), तृतीय पुरस्कार २०००) उन कहानियों पर दिया जायेगा, जो हमारे कहानी-निर्वाचन-मंडल द्वारा क्रमशः सर्वोच्च तीन समझी जायेंगी। अन्य कहानियों पर भी, जो फिल्म बनाने के योग्य समझी जायेंगी, समुचित पुरस्कार दिया जायगा। कहानियां हिन्दी, उर्दू अथवा अंग्रेजी किसी भी भाषा में लिखी जा सकती हैं, पर उनमें मौलिकता, भारतीयता और घटना-वैचित्र्य का होना आवश्यक है। कहानियां ता० ३१ जनवरी तक नीचे लिखे पते पर पहुंच जानी चाहिये।

कहानी-निर्वाचन-मण्डल,
मनहर पिक्चर्स, बम्बई।

श्रीयुत सुरेशचन्द्र ने इस विज्ञापन को दुबारा पढ़ा। उनके मन में एक मधुर आशा का संचार हुआ। आज तक उन्होंने जितनी कहानियां लिखी थीं, वे सब बहुधा अपुरस्कृत ही रही थीं, पर कहानी लेखकों में उनका विशिष्ट स्थान था और मौलिकता एवं शैली के नाते उनकी कहानियों का साहित्य-जगत में अच्छा आदर था। प्रायः सभी पत्र उनकी

कहानियां बड़े चाव से छापते थे। हाल ही में एक प्रकाशक ने उनकी बारह श्रेष्ठ कहानियों का एक सुन्दर संग्रह प्रकाशित करने की अभिलाषा प्रकट की थी।

उन्हें ऐसा लगा मानो यह पुरस्कार उनकी मुट्ठी में ही हो। उनकी भेजी हुई कहानी को निश्चय ही प्रथम स्थान प्राप्त होगा। उन्हें अपनी पत्नी रेखा का ध्यान हो आया, जिसे आज तक धनाभाव के कारण वह जैसा चाहिये वैसा सुख नहीं पहुंचा सके थे। यह बात अवश्य है कि रेखा ने आज तक उनसे किसी प्रकार की शिकायत न की थी। वह सन्तोष की प्रति-मूर्ति थी और केवल उनका प्रेम पाकर ही सन्तुष्ट थी। उन्होंने सोचा ये पांच हजार रुपये वे उसे ही भेंट कर देंगे और कहेंगे — 'मेरी रानी, इन रुपयों से वह सुख खरीदो, जो मैं तुम्हें अब तक नहीं दे सका हूं और जिस पर एक सुन्दर प्रेममयी नारी का पूरा-पूरा हक है।'

वह मन ही मन आनन्द से भरे गये। उन्होंने वह मासिक-पत्र लेजाकर रेखा के सामने रख दिया, जो उस समय एक तकिये के गिलाफ पर कसीदा काढ़ने में व्यस्त थी।

'इसे पढ़ा तुमने?'

'हां-हां, पढ़ लिया' उसने कसीदा काढ़ते-काढ़ते उत्तर दिया 'तुम्हारी कहानी किसी पत्र में निकले और मैं उसे न पढ़ूं ऐसा कभी हुआ है 'रेत के कण' सचमुच बडी सुन्दर बनी है, पर इसे तुमने भेजने से पूर्व मुझे दिखलाया क्यों नहीं?'

'मैं कहानी की बात नहीं करता रेखा! तुमने यह विज्ञापन देखा?'

'मैं विज्ञापन नहीं देखती। उनमें होता ही क्या है? झूठी दवाओं की व्यर्थ प्रशंसा, वर या कन्या की तलाश अथवा नौकर या नौकरी की आवश्यकता।'

'पर यह विज्ञापन उन सबसे भिन्न है।'

'यदि किसी अच्छी सी नौकरी के बारे में हो तो प्रार्थना पत्र भेज देखो। साहित्य-सेवा के भरोसे तो गृहस्थी की नैया पार लग चुकी। अखबार के कालम के कालम तो लोग प्रशंसा से भर देते हैं, पर पैसे के नाम से सबको सांप सूंघ जाता है।'

'यहीं पर तुम भूल करती हो रेखा। पैसा आज है कल नहीं रहेगा, पर यश अमर है। मैं इस विषय पर बहस करके तुम्हें हरा सकता हूं, पर वह सब फिर कभी देखा जायगा। इस समय तो तुम एकबार इस विज्ञापन को पढ़लो।'

रेखा ने विज्ञापन पढ़ा और मुंह बनाकर अविश्वास-सूचक स्वर में कहा — 'यह विज्ञापन झूठा है, ठीक वैसा ही जैसे और सब हैं। एक कहानी के लिए तुम्हें कोई पांच-दस तो देता नहीं, यह कौन है जो हजारों लुटाने को तैयार है?'

'अखबारों की बात करती हो। उनके संचालक अपना पेट तो भर ही नहीं पाते, दूसरों को भला क्या देंगे। फिल्म कम्पनियों की बात और है। वे एक-एक चित्र पर लाखों खर्च करती हैं और लाखों ही पैदा करती हैं। उनके लिए पांच दस हजार व्यय कर देना कोई बड़ी बात नहीं। कहो तो एक कहानी इस प्रतियोगिता में भेज दूं ?'

'कौन सी कहानी ?'

'वही जो तुम्हें मैंने कल सुनाई थी स्वर्ण-रेखा।'

'किसी भी पारखी की दृष्टि में तुम्हारी 'स्वर्ण-रेखा' जरूर खरी उतरेगी, यह मैं मानती हूं। उसका हर चरित्र जीता जागता है। पर्दे पर तो उसमें जान पड़ जायेगी। आखिर कहीं तो उसे भेजोगे ही, इससे यहीं भेज देखो। शायद धन्यवाद सूचक पत्र के बजाय पांच हजार का चेक आजाये।

'मैं कहता हूँ रेखा, यदि एक कहानी प्रतियोगिता में सफल होगई तो धन और दौलत दोनों हमारे पैरों तले होंगे।'

श्रीयुत सुरेशचन्द्र ने कहानी की सुन्दर स्वच्छ प्रतिलिपि तैयार कर मनहर पिक्चर्स के पते पर भेज दी। अब निर्णय की प्रतीक्षा प्रारम्भ हुई। उस दिन से पति-पत्नी के बीच चरचा का एक ही विषय रहता पुरस्कार के लिए भेजी गई कहानी। रोज घंटों परस्पर विचार-विनिमय करने के बाद वे इसी निर्णय पर पहुंचते कि उनकी कहानी निश्चय सर्व्वोच्च समझी जायगी।

दिन बीते, सप्ताह गुजरे, यहां तक कि कई मास निकल गये, पर न तो फिल्म-कंपनी के पास से कहानी की पहुंच ही आई और न पुरस्कार का चेक ही। कल्पना का जो सुन्दर महल सुरेशचन्द्र ने अपने मन में खड़ा किया था, वह गिरकर चूर-चूर होगया।

समय सब कुछ भुला देता है। धीरे-धीरे वे भी इस घटना को भूल गये।

श्रीयुत् सुरेशचन्द्र अपने विवाह का 'वार्षिकोत्सव' बड़े समारोह से मनाया करते थे। उस दिन वे सब कुछ भूलकर एकमात्र रेखा के ही रहते थे। सारा दिन आमोद-प्रमोद में बीतता और शाम को दोनों साथ-साथ सिनेमा जाते। इस वर्ष भी उस प्रोग्राम में कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ। यह जरूर है कि यदि पुरस्कार मिल गया होता तो मन की उमंगे अच्छी तरह पूरी करते, पर मजबूरी थी।

उस दिन 'रोक्सी' में मनहरपिक्चर्स के नये चित्र 'भाग्य-रेखा' का उद्घाटन होने वाला था। इस नाम में सुरेशचन्द्र के लिए स्वाभाविक ही विशेष आकर्षण था; अतः सन्ध्या को दोनों उसे देखने गये। चित्र-परिचय से ज्ञात हुआ कि उसके निर्माता निर्देशक और कहानी लेखक कोई मिस्टर आर० डी० त्रिवेदी हैं। चित्र के दो-

चार दृश्य समाप्त होते ही पति ने पत्नी की ओर देखा और पत्नी ने पति की ओर। बिल्कुल वही कहानी थी, जो १॥ वर्ष पूर्व पति ने लिखी और पत्नी ने सुनी थी। और हां— ठीक याद आया, इसी कम्पनी को तो वह कहानी पुरस्कार प्रतियोगिता में भेजी गई थी। नाम अलबत्ता कुछ और था— शायद 'सुवर्ण रेखा.' हां 'स्वर्ण–रेखा' ही।

अवकाश होते ही हाल में रोशनी हो गई। सुरेशचन्द्र ने रेखा की ओर मुड़कर कहा— 'देखती हो।'

'देख तो रही हूं' रेखा ने उत्तर दिया 'यह तो तुम्हारी लिखी हुई कहानी है।'

'हाँ-हां बिल्कुल वही है, पर इसके लेखक हैं मि० आर० डी० त्रिवेदी, श्री सुरेशचन्द्र बी० ए०, साहित्याचार्य नहीं। मेरे दिल में आग लग गई है। दुनियां में कितनी बेईमानी है। मगर तारीफ करता हूं उसकी सूझ की। क्या तरकीब निकाली ? घर बैठे ही एक से एक अच्छी कहानियां पहुंच गईं और खर्च एक कौड़ी न हुई। मजा तो यह है कि बिना श्रम किये मि० आर० डी० त्रिवेदी कहानी लेखक बन गया। उसे कलम पकड़ने का भी शऊर होगा या नहीं कौन कह सकता है ? — चलो रेखा, अब मैं यहां एक क्षण भी ठहर नहीं सकता। मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है ?'

दोनों हाल से बाहर निकल आये। कोई और समय होता तो वे सवारी पर जाते, पर उस समय मनोभावों की तीव्रता के कारण वे पैदल ही चल पड़े और रास्ते भर दोनों में एक भी बात न हुई।

दूसरे दिन श्री सुरेशचन्द्र के हाथ में एक सिनेमा पत्र था, जिसके प्रथम पृष्ठ पर 'भाग्य-रेखा' के निर्माता, निर्देशक और कहानी लेखक मि० आर० डी० त्रिवेदी का शानदार चित्र छपा था। भीतर 'भाग्य रेखा' की विस्तृत आलोचना थी जिसकी अन्तिम पंक्तियां ये थीं—

'भाग्य-रेखा' हर पहलू से एक सफल और आदर्श चित्र है। हम दूसरे फिल्म निर्माताओं से अनुरोध करेंगे कि वे इससे सबक सीखें और भविष्य में ऐसे ही सुंदर और आदर्श चित्रों का निर्माण करें। इसी में उनकी और देश की भलाई है। हमें इस बात की प्रसन्नता है कि मनहर पिक्चर्स ने इस बात को महसूस किया है कि फिल्म कम्पनियों का काम लोगों का सस्ता मनोरंजन करना ही नहीं है बल्कि उनको शिक्षा देना भी।

'श्रीयुत आर० डी० त्रिवेदी से कहानी-लेखक के नाते यह हमारा पहला ही परिचय है, पर वे इस क्षेत्र में कितना आगे बढ़े हुए हैं 'भाग्य-रेखा' इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है। वे तो छिपे रुस्तम निकले। हम उन्हें ऐसी कला और शिक्षापूर्ण कहानी चित्रपट को प्रदान करने के लिए बधाई देते हैं। यदि वे इस कहानी को पुस्तकाकार छपवा दें तो निश्चिय ही हिंदी साहित्य में एक अमूल्य रत्न की वृद्धि हो जाय।'

श्रीयुत सुरेशचन्द्र ने इसे पढ़ा और अपना सिर पीट लिया।

"तनख्वाह की रात"

(लेखक - हृदय नारायण जरौल, बी.ए.)

महीने की इस तारीख कारखाने के मजदूरों के लिए बड़ी आशा और उमंग का दिन होता है। प्रत्येक मजदूर के चेहरे पर उस दिन विचित्र प्रसन्नता खेलती हुई नजर आती है। यह उसकी तनख्वाह का दिन होता है। इसी दिन के लिए वह महीने भर तक अपना खून पसीना एक करता है। न गर्मी की चिलचिलाती धूप देखता है, न बरसात की मूसलाधार झड़ी और न जाड़े की बदन में तीर की तरह प्रवेश करनेवाली ठंडी हवा। प्रतिदिन नियमित रूप से सीटी की आखिरी आवाज पर सुबह सात बजे वह कारखाने के अहाते में प्रवेश करता है और शाम के पांच बजे तक हल के बैल की तरह काम में जुता रहता है। ऐसे तीस दिन निकाल देने के बाद यह एक दिन आता है, जब मुर्दा चेहरों पर भी रौनक की छाया नजर आती है।

रामधन ने अपनी तनख्वाह की डिबिया संभाली तो उसमें बाइस रुपये तेरह आने निकले। यह उसकी पूरे एक माह की कमाई है, जिसमें महंगाई भी शामिल है। अपनी बगलबंदी के भीतर की जेब में अपनी पूंजी रखकर वह अपने ठीये पर आ गया।

उसने सोचा अपने बच्चों के लिए आज वह कुछ मिठाई जरूर ले जायगा। बेचारे मिठाई के एक टुकड़े के लिए तरस जाते हैं। जब पड़ोसियों के बालक खोंचेवालों से भर-भर दोना मिठाई खरीदते हैं, तो वे टुकुर-टुकुर कैसी हसरत भरी निगाह से उनकी तरफ देखा करते हैं। हर छुट्टी के दिन वह अपनी आंखों से यह स

देखता है और मन ही मन कलेफ कर रह जाता है। किसी-किसी दिन जब वे मिठाई के लिए मचलने लगते हैं तो वह दो-दो थप्पड़ रसीद कर उन्हें शांत करता है। कम से कम आज, महीने में एक दिन वह उनकी लालसा अवश्य पूरी करेगा।

पत्नी के लिए छींट का एक टुकड़ा भी लेना है। उसका लंहगा फटकर एक दम बेकार हो गया है। फिर महीने भर के लिए नाज-पानी भरना है। जूतों की तो उसे भी ज़रूरत है, पर वह अगले महीने देखा जायगा। जैसे इतने दिन नंगे पैर बीत गये वैसे ही बीस दिन और निकल जायेंगे।

तनख्वाह के दिन एक घंटा पहले छुट्टी होती है। समय होते ही अपने औजार ठिकाने से रखकर वह अन्य मजदूरों के साथ फाटक की तरफ चला, पर दो कदम ही बढ़ा था कि ठिठक कर खड़ा हो गया। जो कहीं बाहर पठान मिल गया तो? उसकी तो उसे याद ही नहीं रही थी। बड़ी गलती की उसने जो अपनी त किसी और के नाम न उठवा ली। इस संकट से तो छुटकारा हो. फिर तो हाथ-पैर जोड़कर वह पठान को राजी कर लेता। अब क्या करे वह? पठान आया तो अवश्य होगा और फाटक के बाहर उसका इन्तजार कर रहा होगा।

पिछले महीने उसकी पत्नी राधा बहुत बीमार हो गई थी- इतनी कि जान के लाले पड़ गये थे। पैसा पास में था नहीं। लाचार एक साथी की सलाह से उसने एक पठान से चालीस का कागज़ लिखकर बीस रुपये कर्ज ले लिए थे, जिसका आधा इसी तनख्वाह पर चुकाना तय हुआ था। बीस पठान को देने के बाद उसके पास बचेगा ही क्या? और कोई मार्ग भी नहीं है कि उससे

निकल जाये और पठान का सामना ही न हो। पर एक सामनेवाला फाटक है, जिसमें से होकर ही उसे गुजरना होगा। उसने अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। आदमियों के समूह को देखकर उसे कुछ ढाढ़स हुआ। संभव है इतनी भीड़ के भीतर पठान की नजर उसपर पड़े ही नहीं और वह साफ निकल जाये। इस विचार ने उसके साहस का संचार किया। फिर भी उसका हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था।

फाटक के बाहर वह इतनी शीघ्रता से निकला जैसे चोरी करके भाग रहा हो। फाटक के सामने ही बच्चों का झुंड एक था, जो मिठाई और पैसों के लालच से वहां आये थे। शायद हिरिया और कलुआ भी उन्हीं में हों, पर उधर देखने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ी, क्योंकि उसके ठीक पीछे ही उसे पठानों के जूते चमकते हुए दिखाई पड़े।

वह आदमियों के पीछे छिपता-छिपाता सावधानी से आगे बढ़ा। मार्ग के दोनों ओर मिठाईवाले ठेलों पर तरह-तरह की मिठाइयां बेच रहे थे। उसके मन में आया कि वह भी अपने बच्चों के लिए दो-चार आने का कुछ खरीद ले, पर इसके लिए उसे रुकना होगा और रुकने का अर्थ था जान-बूझकर पठान का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना। अपनी इस इच्छा को मन में ही दफना कर वह आगे बढ़ गया।

बाहरी अहाते के फाटक के पास कपड़ा बेचनेवालों ने रंग-बिरंगी छींटों के थान सजा रखे थे। और कोई समय होता तो वह अपनी पत्नी के लिए छींट का एक अलबेला टुकड़ा बिना खरीदे आगे न बढ़ता, पर आज तो हर तरफ उसे पठान की ही सूरत नजर आ रही थी। उसका ध्यान बाहरी फाटक पर ही

केन्द्रित था, जो अब केवल दस-बारह गज के फासले पर रह गया था। उसके बाहर होते ही वह पठान के संकट से मुक्त हो जायेगा। फिर तो वह एक सांस में घर पहुंचेगा। क्यों न वह दौड़कर उस फाटक के बाहर हो जाये, पर उसे भागते देखकर लोग न जाने क्या सोचने लगें? इसलिए वह मन्द गति से फाटक की तरफ़ चला - उसी तरह और और लोग जा रहे थे। मानो उसे किसी बात का भय न हो, पर उसका हृदय बल्लियों उछल रहा था।

अब फाटक सिर्फ़ दो कदम पर था। इतनी दूर सही-सलामत पहुंच जाने के कारण उसका हृदय बहुत कुछ शांत हो गया था। बस दो पग आगे की देर थी और वह पठान के खतरे से बाहर हो जाता कि अचानक उसके कंधे पर किसी का बलिष्ठ हाथ पड़ा - "हम तुम को ~~उधर~~ उधर ढूंढता था और तुम इधर से भाग रहा है।"

रामधन को जैसे सांप सूंघ गया। यमराज की तरह पठान सामने खड़ा हुआ था।

"हमारा रुपी किधर है?" पठान ने कड़क कर कहा।

अब रामधन को थोड़ा होश हुआ। उसने आजिजी से कहा - "पठान भाई, इस बार माफ़ कर दो। बहुत कम पैसे मिले हैं इस बार और कई जरूरी चीज़ें लेनी हैं। अगली तनख्वाह पर सब रकम चुका दूंगा।"

"भाई-भाई हम कुछ नहीं समझता। तुम हमारा रुपी अभी इसी दम लाओ, नहीं तो हम बोत खराब आदमी है। समझा।"

पठान ने यह बात कुछ ऐसे ढंग से कही कि रामधन

सहमकर दो कदम पीछे हट गया। बिना कुछ दिये इस दुष्ट से छुटकारा मिलना उसे दुस्वार जान पड़ा। उसने सोचा शायद कुछ दे-देने से काम चल जाय। बगलबंदी की भीतरी जेब से सब रुपये निकालकर उसने अपनी हथेली पर रक्खे, पर इससे पूर्व कि वह अपने हाथ से दस का एक नोट उठाकर उसके हाथ में दे पठान ने झपट कर दोनों नोट ले लिये और कहा — "हम आधा रुपी ले लिया। आधा अगली ~~[illegible]~~ तनख्वाह पर ले लूगां अब कुछ ना कहते है। — सलाम।"

और वह बिना और कुछ कहे दूसरी तरफ़ चला गया।

रामधन कई मिनट तक हक्का-बक्का जिस तरफ़ पठान गया था उधर ही देखता रहा। अब वह क्या करे? खाली हाथ घर जाय? तनख्वाह तो लुट गई।

एकाएक उसे कोई बीती बात सी याद हो आई। शेष रकम को मुट्ठी में दबाये हुए वह एक तरफ़ को चल दिया। जैसे उसे भय था कि कहीं उसकी यह पूंजी भी न चली जाय!

रामधन सीधा ठेके पर पहुंचा। वह शराब के नशे में इस यातना को भूल जाना चाहता था।

एक अद्धा शराब का लेकर वह वहीं एक किनारे बैठ गया। फिर उसे खोलते हुए निकट ही बैठी हुई खोंचेवाली स्त्री को आवाज देकर कहा — "अरे गौरी, चार आने की कलेजी तो ले आना।"

उस स्त्री का नाम ही गौरी है अथवा यहां आने वालों ने उसका यह नाम रख दिया है, यह कहना कठिन है; पर अब वह इसी नाम से जवाब देती है। जिसने भी उसका यह

नाम रखा है वह अवश्य बड़ा रंगीला आदमी रहा होगा, क्योंकि गोरी रंग की एक हसीन स्त्री है। जवानी के आलम में यह मुमकिन है उसमें कुछ आकर्षण रहा हो, पर अब तो उसकी अवस्था काफी ढल चुकी है। फिर भी वह अपने होंठ रंगों से पर काजल-बिन्दी से खूब बन-ठन कर बैठती है और जब पीनेवालों की आंखों में घूरकर देखने लगती है तो वह उन्हें

गोरी ने बड़ी नज़ाकत के साथ कलेजी का प्याला लाकर रहमान के आगे रख दिया। रहमान ने खींच कर उसे भी पास ही बैठा लिया।

"लो एक प्याला तुम भी पियो।"

"मैं क्यों पियूंगी।"

"क्यों भला?"

"दुकानदारी जो करनी है।"

"दुकानदारी होती रहेगी। ज्यादा नहीं, बस एक प्याला ले लो।"

"तुम तो नाहक ज़िद करते हो।"

"ज़िद नहीं। आज इतने दिन बाद तो आया हूं। गोरी, तुम्हारे बिना शराब बिल्कुल फीकी मालूम होगी।"

रहमान गोरी का एक पुराना प्रेमी है। जब तक शादी नहीं हुई थी और बीबी-बच्चों के जंजाल से बचा हुआ था, वह बिना नागा ठेके पर आता था और अपनी दिन भर की कमाई गोरी के हवाले कर जाता था। पर जब से उसकी शादी हो गई है और वह दो बच्चों का बाप बन गया है, उसने ठेके पर आना बिल्कुल बन्द कर दिया है। लेकिन

जब कुछ कहे बगैर बाद उसने ठेके के भीतर कदम रखा है। गोरी उसके इसरार को टाल न सकी। दोनों ने तेल में भुनी हुई कलेजी के सहारे कड़वी शराब के कुल्हड़ पर कुल्हड़ खत्म करने शुरू कर दिये।

धीरे-धीरे नशा बढ़ने से वह सब कुछ भूल गया - तनख्वाह की बात, फर्ज की बात, अपने बीबी और बच्चों की बातें। उसकी शराब के नशे से पुरमस्त असर में केवल गोरी तैर रही थी।

X X X X

आधी रात गये रामधन ने अपनी झोंपड़ी की कुंडी खटखटाई। राधा उस समय भी जाग रही थी। बच्चे मिठाई का इंतजार करते-करते थककर सो गये थे। उसने उठकर कुंडी खोली तो रामधन ने लड़खड़ाते पैरों से भीतर प्रवेश किया उसके मुख से शराब की गंध दूर-दूर तक उड़ रही थी।

राधा को कुछ भी समझना बाकी नहीं रहा। फिर भी उसने पूछा -

"इतनी रात तक कहां रहे?"

"तू पूछने वाली कौन?"

"मालूम पड़ता है ठेके पर से आ रहे हो।"

"हां, आ रहा हूं तो तेरे बाप का क्या?"

"मेरे बाप का क्या वह तो कब के पार लग गये। अपने बाप-दादा के मुख पर जबरन कालिख लगा रहे हो।"

"मेरे बाप-दादा तक पहुंचती है! - हरामजादी जीभ खींच लूंगा जो ज्यादा बढ़-बढ़ लगाई होगी।"

"जीभ क्यों खींचो मेरी मैं कोई झूठ कह रही हूं।

ये फूल से बच्चे एक-एक दाने को तरसते है और तुम ठेके पर जाकर शराब की नदिया उड़ाते हो।"

"उड़ाता हूँ तो अपने पैसे। तुम्हें क्यों बुरा लगता है"

राधा उसका कुछ तीखा जवाब देना चाहती थी, परन्तु रह गई, क्योंकि वह बात बढ़ाना नहीं चाहती थी। उसने बात पलटकर पूछा

"तनख्वाह कहाँ है ?"

"तनख्वाह लेगी। - ले।" और उसने बची हुई रेजगारी आंगन में उसके पैरों में फेंक दी।

"बस ! - और पैसे कहाँ हैं।"

"और पैसे तेरा बाप लेगया।"

राधा ने चुनकर जमीन से रेजगारी उठाई। कुल नौ आने थे। रामभजन के पास फेंककर बोली - "यह भी ले जाओ अपनी उसी रांड को जिसके पास से आये हो।" और टप-टप उसकी आंखों से आंसू टपक पड़े।

रामभजन का नशा उस समय तेजी पर था।

"जब से घर में घुसा हूँ बड़-बड़ किये जा रही है। टेसुए बहाने लगी। चुड़ैल कहीं की!" और उसने आगे बढ़कर उसके दो हाथ जमा दिये। राधा चीख उठी। उसकी चीख की आवाज सुनकर बच्चे जाग पड़े और मां को रोते देखकर वे भी रोने लगे। रामभजन ने दो-दो हाथ उनके भी जमाये और फिर अपनी खटिया पर धम्म से जा पड़ा। थोड़ी देर में ही वह नशे की गफलत में खर्राटे भरने लगा। राधा अपने बच्चों को कलेजे से चिपटाये सारी रात आंसू बहाती रही।

हृदय नारायण सरीन

लाज का मूल्य

(लेखक = कृष्ण नारायण (तरीन, बी.ए.)

—— x ——

1.

पतिया ने अपने रुग्ण पति की ओर देखा, जो एक टूटी खाट पर पड़ा हुआ ज्वर की बेचैनी से कराह रहा था। आज आठ दिन से उसकी हालत ज्यादा खराब है। पहले तो ज्वर बीच-बीच में कभी-कभी उतर जाता था। पतिया का पति सुक्खू राज का काम करता है। जिससे

किसी कुछ काम-धंधा करके वह रुपया-धेली कमा

लाता था और कभी एक जून और कभी दोनों जून पति-पत्नी के भोजन का प्रबंध हो जाता था पर इधर आठ दिन में एक दिन भी ऐसा नहीं बीता कि ज्वर एक मिनट के लिए भी टूटा हो। पिछले सनिचर को एक जगह मरम्मत का काम मिल गया था। वहां से लौटा तो आंखें लाल हो रही थीं और शरीर तक तमतमा रहा था। लौटते ही जो खाट पर गिरा तो आज तक पड़ा ही पड़ा है। पास-पड़ोस से मांग-जांच कर पतिया ने जो कुछ हो सका किया। जिसने जो दवा-दारू जड़ी-बूटी बताई की, पर मर्ज घटने के स्थान पर बढ़ता ही गया।

वह करे तो क्या करे? किसी बड़े डाक्टर-वैद्य को बुलाकर दिखलाने की सामर्थ्य है नहीं। डाक्टर-वैद्य के लिए काफी पैसा चाहिये। पैसा अब कहां धरा है। जो दो चार रूपये उसने बचा कर रखे थे कब के खतम हो गये। बल्कि पड़ोसियों का उस पर कर्जा हो गया है। वे भी बेचारे उसकी जैसी स्थिति के हैं। कहां तक मदद कर सकते हैं। जो कुछ कमा कर लाते हैं उससे उनका ही खर्चा चल जाये तो गनीमत समझो। वह स्वयं भूखी रह कर अभी कई दिन और गुजार सकती है, पर उसका बीमार पति बिना दवा-दारू और पथ्य -पानी के कैसे रह सकेगा? अप्ने जी की व्याकुलत वह किससे कहे? अपने दिल का दर्द किसे सुनाये?

उसके दु:ख दर्द की एक शरीक है- रधिया जो भरी जवानी में विधवा हो गई अब कोई ४० -५० साल की उम्र है पहले उसके भी सब थे - माँ - बाप, सास - ससुर, भाई - बहिन, बेटा - बेटी; पर काल ने एक - एक कर्के सबको खा लिया। तबसे अकेली रहती है। और मजूरी करके अपना पेट पालती है। पतिया से न जाने क्यों उसे बड़ा स्नेह है। आड़े वक्त वह उसके काम आती है। जी न माना तो उसी के घर सवेरे - सवेरे जा पहुंची। रधिया उस समय काम पर साथ ले जाने के लिए रोटीयां सेक रही थी

"काकी, ओ काकी -"

" क्या हैरी? हाथ की रोटी तवे पर डालने के बाद रधिया ने पतिया की तरफ देखा।

फिर पूछा - " आज सुक्खू का क्या हाल है?

"वैसा ही है काकी। पड़े कराह रहे हैं।"

"बुखार उतरा नहीं ?"

"नहीं काकी। अभी कहां उतरा? बल्कि ज्यादा ही होगा?

"ठीक से लग कर इलाज़ काहे ना करती"

"कर तो रही हूं काकी। और कैसे करू? जो भी दवा-दारू तुम सब बताती हो, सभी तो दे रही हूं, पर आराम हो जब न।"

रोटी तब तक सिक गई थी। उसे उतार कर राधिया ने दूसरी तवे पर डाली। तब कहा— "पतिया तू तो बावली है। गांव वालों के चुटकुलों से आजकल कहीं काम चलता है। शहर के किसी डाक्टर को क्यों नहीं दिखलाती?"

" अब शहर में सरकारी अस्पताल में ले जाके दिखाने का मन है"

" ना बाबा सरकारी अस्पताल में भूल कर न जाना। वह नाम का ही गरीबों के लिए है। उन्हें वहां दवा की जगह पानी मिलता है और असली दवा उनहें दी जाती है जो पैसों से डाक्टरों और कंमपोडरों का घर भरते हैं तू तो शहर के ही किसी अच्छे डाक्टर को ही लाकर दिखवा भले ही उस में दो-चार रूपये खर्च हो जाय। सुक्खू सलामत रहेगा तो और बहूत धन इकठ्ठा हो जायेगा"

"पर काकी, उन्होंने मना जो कर रखा है।"

"मना कर रखा है! — जब मर जायेगा तो बैठके रोइयो करम को।"

"ऐसा न कहो काकी!" और पतिया फफक - फफक कर रो पड़ी

"रोती काहे को है?" तीसरी रोटी तवे पर डालते हुए राधिया ने कहा— "मैंने तो एक बात कही थी। तू ही सोच देख न, जब घर में पैसा ही नहीं होगा तो इलाज कहां से होगा और जब इलाज नहीं होगा तब -"

"बस-बस काकी, आगे मत कहो।" पतिया ने रोते-रोते कहा— "मैं काम तो कर लूं, पर जो कहीं उन्हें मालूम हो गया तो न जाने क्या हो?"

"मैंने तो अभी जो ठीक समझा कहा। आगे तेरी मर्ज़ी। काम मिलने में तुझे देर नहीं लगेगी। तुझे तो मालूम है आजकल लेडी हस्पताल की नई कोठी का काम चल रहा है। मैं वहीं काम करने जाती हूँ। तू कहेगी तो तुझे भी रखवा दूंगी। अभी भी वहां बहुत सी औरतों की जरूरत है। तू आजकल

आगा-पीछा अच्छी तरह विचार ले। जब तेरा जी पक्का हो जाये मेरे पास, आ जाना, मैं उसी दम ले जाकर सब ठीक करा दूंगी।"

तब फतिया अपने घर लौट आई। रामिया की बातों ने उसके दिल में एक हलचल-सी मचा दी थी।

ठीक ही तो कहती है बेचारी। पैसे के बिना आजकल दुनिया का कोई भी काम नहीं हो सकता। सुक्खू का डर न होता तो वहीं हामी भर लेती। एक मन करता है कि वह भी औरों की तरह मजूरी कर ले। कुछ तो सहारा हो जायगा। मगर रह-रहकर सुक्खू का डर उसे रोक देता।

. 2 .

दो साल हुए फतिया सुक्खू के घर ब्याह कर आई थी। तब उसके बदन पर दो-दो जोड़ चांदी के गहने थे। गांव की औरतों ने जब देखा तो उनके कलेजे जल उठे। मगर फतिया के मां-बाप ने उसे भारी गहने दिये थे, तो सुक्खू ने भी अपनी तरफ से कोई कसर न रखी थी।

सुहागरात को जब दोनों ने एक दूसरे को देखा तो खुशी से फूले न समाये। फतिया रह-रहकर देख रही थी लाजभरी झुकी हुई आंखों की कोरों से अपने पति को। उसका गठा हुआ मांसल शरीर, गोरा-चिट्टा रंग, घुंघराले बाल, हंसमुख चेहरा उसके नैना और मन को बरबस अपनी तरफ आकर्षित कर रही थी। सुक्खू अपनी पत्नी को देख-देखकर गर्व से फूला जा रहा था। कैसी सुन्दर सी वह — गोल-गोल मुख, कटोरा जैसी आंखें, कुन्दन-सा चमकीला रंग, गदराई हुई जवानी। मानो ब्रह्मा ने उसे अपने हाथों से गढ़ा हो। और दोनों इसी तरह घण्टों एक दूसरे को देखते ही रह गये।

साल भर तक दोनों गाँव में ही रहे। सुक्खू के माँ-बाप कुछ पैसा छोड़ गये थे, जिनसे खान-पान मजे में हो जाता था। जीवन के उस रंगीन काल में। इससे अधिक सोचने का अवकाश ही किसे था। उसके पिता की ग्राम भर के लोगों में थी और अब भी शहर की कितनी ही पक्की ऊँची अट्टालिकाएँ उनके यश का बखान कर रही थीं। अपना सारा गुण उसने अपने पुत्र में भी भर दिया था और बीस बरस की छोटी उमर में ही सुक्खू ने अपने कामों से अपने बाप के समान ही इज्जत हासिल कर ली थी। बड़े-बड़े जमींदारों के काम उसे सौंपे जाते थे और वह उन्हें ईमानदारी और नामवरी के साथ अंजाम देता था। अपने गाँव का शिवालय जब उसने तैयार कर दिया था तो उस समय ठाकुर भजन सिंह ने उसे सौ रुपये इनाम के दिये थे।

विवाह होने के बाद वह अपनी नवागता पत्नी में ऐसा लीन हुआ कि सारा काम-धंधा ही छोड़ बैठा। वह बाहर भी मुश्किल से निकलता। जब कभी पत्नी उसे काम पर जाने को कहती तो वह उत्तर देता "अभी नहीं रानी! मैं रूप-यौवन की मदिरा से छक जाऊँ तब दूसरी बात सोचूँगा।"

और प्यार से वह उसका चुंबन कर लेता। वह चुप हो जाती।

बैठकर खाते-खाते तो कुबेर का भंडार तक खाली हो जाता है, फिर सुक्खू की पैतृक संपत्ति की क्या बिसात थी? केवल कुछ सौ रुपये ही तो थे। साल का अन्त होते-होते उनका भी शेष हो गया। तब सुक्खू अपनी पत्नी को लेकर शहर चला आया और शहर के बाहरी हिस्से में एक कोठरी किराये पर लेकर रहने लगा। पिता के नाम की बदौलत उसे यहाँ भी काम मिलने लगा। शुरू के तीन माह उसके बड़े आराम से बीते, पर उसके बाद वह ऐसा बीमार पड़ा कि छः महीने तक खाट से न

उठो। वह था मजदूर। काम करता तो पैसे मिलते। बीमारी में काम-धाम छूटा तो आमदनी बंद होगई। पतिया ने कईबार कहा कि जब तक तुम बीमार हो, तब तक मैं ही कहीं कुछ मजदूरी करलूं कुछ तो काम चलेगा। पर सुकखू ने उसे डांट दिया। कहा _"मेरे कुल की परंपरा ही पतिया हरगिज-हरगिज काम नहीं करेगी। खबरदार जो आज पीछे यह बात जबान पे लाई। जबतक मैं ठीक नहीं होता, तब तो तू गहनों को बेचकर काम चला। आखिर ये इसी दिन के लिए तो हैं। मैं जब ठीक हो जाऊंगा तो आनन-फानन पैसे और [illegible] बनवा दूंगा।"

तब गहनों को बेचने का काम चालू हुआ। पहले पतिया के पैर सूने हुए, फिर हाथ और फिर गला। एक एककर जब सारे गहने समाप्त हो गये तब कहीं जाकर सुकखू ठीक हुआ, पर अभी वह कमजोर ही था कि फिर काम पर जाने लगा। न जाता तो करता क्या? अपनी और अपनी पत्नी का पेट कैसे भरता। फल वही हुआ जो होना चाहिये था। वह फिर बीमार पड़ गया। अब गहने भी नहीं थे, जिनको बेचकर काम चलाता। कुछ दिन पतिया ने पड़ोसियों से मांग जांच कर काम चलाया, पर उसे भी बार-बार मांगते उसको लाज लगती थी। लाज की बात ही थी। रोज-रोज कौन किसी की मदद करता है? आज वह राधिया से कुछ पैसे उधार मांगने के लिए गई थी, पर मारे शर्म के उधार का नाम न ले सकी और वह इधर उधर की दो चार बातें करके लौट आई। अब आज के अभाव में घर में चूल्हा तक नहीं जला। पर ऐसे कब तक चलेगा? यदि उसे अपने पति का जीवन प्रिय है, तो उसे कुछ न कुछ करना ही होगा। ज्यादा तो नहीं, पर डलिया तो वह बो ही सकती है। और राधिया कहती थी कि आजकल तो ऐसे काम में भी अच्छे पैसे मिल जाते हैं।

लेखक श्री हृदय नारायण सरीन

सारी रात वह इसी उधेड़ बुन में जागती रही |

+ ३ +

सुबह होते ही वह राधिया के पास पहुंची।

"काकी, मैंने तय कर लिया है कि मैं भी काम पर चलूंगी।"

"ऐसी तुझे आफत तो आई!"

"काकी, उनकी तकलीफ मुझसे देखी नहीं जाती। उन्होंने मेरे सुख के लिए अपना सर्वस्व गंवा दिया। मेरा भी तो कुछ धरम है।"

"हम क्या नहीं करते। औरतें खाली होने के लिए ही थोड़ी बनाई गई हैं। आजकल तो औरतें ऐसे ऐसे काम काम करती हैं कि मद दातों तले उंगली दबा लेते है | इसी कांग्रेस के काम में सैकड़ों औरतें जेल तक जा रही हैं।"

तब दोनों मिल के-मिल के सेठ हरदयाल की नई कोठी की तरफ चल दीं। वहां से कोई दो मील की दूरी पर उसका निर्माण हो रहा था। सैकड़ों कारीगर और मजदूर लगे हुए थे। ईंटें ढोने, गारा-मिट्टी ढोने आदि का हल्का काम औरतों और बालिकाओं के सुपुर्द था। उनकी हाजिरी आदि का हिसाब-किताब ठेकेदार का साला भगतसिंह रखता था। उम्र उसकी कोई २८-३० साल की रही होगी, पर था वह पहुंचा हुआ आवारा। कोई जवान औरत देखी नहीं कि उसके पीछे लगा। काम पर आनेवाली कितनी ही जवान औरतें उससे बची होंगी।

राधिया ने ले जाकर मालिया को उसके सामने खड़ा कर दिया। भगतसिंह ने जो उस पर नजर डाली तो भौंचक्का रह गया। रूप और जवानी जैसे फटी पड़ती थी। आज तक अनेक औरतें उसके सामने से गुजरी थीं, पर यह

नई औरत तो सचमुच गजब की चीज थी। उसने मन ही मन कुछ निश्चय किया और मुस्कुराया।

"यह क्या काम कर सकती है?" उसने पूछा।

"सरकार, अभी तो इसका काम ही देना होगा। नई है। देखा-भाला है नहीं। जब कुछ समझने लगेगी, तो बड़े काम भी कर लेगी। चौकस है, होशियार।" राधिया ने उत्तर दिया।

"तेरा नाम क्या है?"

"पतिया, सरकार!" राधिया ने ही उसकी तरफ से उत्तर दिया।

"मैंने बारह आने रोज लगा दिया है। इसे गिरधारी मिस्त्री के पास ले जाओ। मेरा नाम लेकर कहना कि छोटे बाबू ने भेजा है।"

तब राधिया उसे गिरधारी मिस्त्री के पास पहुँचा आई। वह एक दीवार की पक्की रखाई कर रहा था। पतिया को काम दिया गया उसके पास ईंटें पहुँचाने का। ईंटों का ढेर जरा दूर पर लगा हुआ था। वह ढेर में से आठ ईंटें सिर पर रखकर मिस्त्री के पास उठा लाती।

हाजिरी का काम निबटाकर आत्मसिंह भी वहीं आकर जम गया और शाम तक पतिया को भेड़िये की तरह देखता रहा।

शाम को छुट्टी होने पर राधिया ने दबी जबान से पतिया की दुर्दशा का हाल बताकर आत्मसिंह से सिफारिश की कि उसको कुछ रकम पेशगी दे दी जाय तो बड़ा उपकार हो।

"पेशगी! अभी आज ही तो काम शुरू किया है और आज ही पेशगी!" आत्मसिंह ने एक अजब बेरुखी का भाव दिखाते हुए कहा।

"उसके पति की हालत बहुत खराब है, बिना दवा-दारू के बिना पड़े हैं। आप का जस होगा।"

"फिर तो ये काम चल जायगा?" अमरसिंह जरा नरम पड़ा।

"जितना आप मुनासिब समझें।"

अमरसिंह ने मुस्कुराते हुए पतिया के हाथ पर पांच रुपये धर दिये।

पतिया जब घर लौटी तो एक डाक्टर को साथ लेती गई। मुकुन्द उस समय ज्वर में बेहोश पड़ा था। डाक्टर ने देखकर नुस्खा लिख दिया और कहा यह दवा पिलाओ और फल खूब खिलाना ठीक होने में समय लगेगा इनकी कमज़ोरी बहुत बढ़ गई है।

तब वह जाकर दवाखाने से दवा ले आई। डाक्टर की फीस और दवा के दाम आदि में उसके चार रुपये खर्च हो गये। बाकी एक रुपये में हल्के मेल के वह चावल ले आई। उसने भगवान का नाम लेकर पति को दवा दी। फिर कुछ चावल अपने लिए उबाल लिये।

* ४ *

दूसरे दिन सुबह जब पतिया अपने पति को दवा देकर काम पर जाने के लिए तैयार हुई, बाहर निकलने लगी तो मुकुन्द ने कमजोर आवाज में पूछा—"कहां जा रही हो?"

"कहीं नहीं।"

"कहीं तो जरूर जा रही हो। कल भी सुबह की गई-गई शाम को घर वापिस आई थी। वह तो पड़ोस का कलुआ दिन भर मेरे पास बैठा रहा, नहीं तो पानी की एक बूंद को भी तरस जाता।"

काम पर जाते समय पतिया ही कलुआ को उसकी मां को कह कर अपने पति के पास, बैठाल गई थी मगर उसके काम जाते ही लग गया तो फिर

वह कोठे पर रहेगी ? ऐसी हालत में कोई न कोई तो उनके पास रहना ही चाहिये । न जाने किस वक्त क्या चीज मांग बैठें । पर पतिया ने यह सब नहीं कहा ।

"कल तो शहर गई थी डाक्टर को लाने"

" तो कल शाम को जो मुझे देखने आया था वह डाक्टर ही था । क्यों ? पर डाक्टर को लाने में तो बड़े पैसे लगते हैं । पैसे कहां से आये तेरे पास ?"

" राधिया काकी ने [illegible] को दिया था ।" पतिया ने एक ऐसा सच कहा, जो आज से सच होने पर भी भीतर से झूठ था ।

" आज फिर कहां जा रही है ?"

" अभी डाक्टर के पास । क्यों कहा ? आज तुम्हारा हाल जो कहना है । फिर आज के लिए दवाई लानी है, फल लाने हैं ।"

" क्या यह सब मुफ्त में आयेगा ?"

" नहीं तो, दाम लगेंगे ।"

" दाम आयेंगे कहां से ?"

" सच बताऊं, तुम बुरा तो न मान जाओगे ।" पतिया ने झूठ बोलने के लिए "सच" से श्री गणेश किया ।

" कह तो सही ।"

" पहले मेरी कसम खाओ कि सुनकर बिगड़ोगे नहीं ; कुछ कहोगे नहीं ।"

"अच्छा तो कुछ न कहूंगा, बस ।"

" तुम तो जानते हो राधिया, रामदेई, पियारी, कलुआ की अम्मा वगैरह मुहल्ले की कई औरतें सेठ हरदयाल की कोठी पर मजूरी करने जाती हैं । जब तक वह काम करती रहती हैं मैं उनके बच्चों की देख-भाल करती हूं । वे सब मिलकर मुझे बारह आने रोज दे देती हैं । मैंने सोचा तुमने मजूरी करने

को मना किया है, इस काम को नहीं। रधिया ने भी बड़ा ज़ोर दिया, तब कहीं जाकर मैंने हामी भरी। उसने रोज़-रोज़ भीख मांगने से तो अब बचा है। शुरू-शुरू में उसको कुछ ज़्यादा परेशानी होती है।" पतिया ने हंसकर [illegible] "और कुछ तो नहीं करती। उसकी तरह डलिया तो नहीं होती।"

"नहीं — मैं भी क्या पागल हूं।"

"यह तो ठीक। — फिर देख जा तो रही है, पर ज़रा जल्दी आना। मैं यहां अकेले पड़ा-पड़ा घबरा जाता हूँ।"

"कलुआ रहेगा तुम्हारे पास। जिस चीज़ की ज़रूरत पड़े उससे मांग लेना। खुद ज़्यादा उठना-बैठना मत। — और हां, दवाई टाइम से पी लेना, एक खुराक दोपहर को और दूसरी शाम को।"

इतनी बात-चीत में उसे काफ़ी देर हो गई। इसीसे जब वह रधिया के घर पहुची तो मालुम हुआ कि वह तो कब की चली गई। तब वह अकेली ही कोठी की तरफ़ चल पड़ी। काम पर पहुंचने में उसे लगभग आधा घंटा देर हो गई, पर आनन्दीदेई ने उससे इस बारे में कुछ न कहा केवल उसकी तरफ़ देखकर मुस्करा दिया।

+ ५ +

गिरधारी मिस्त्री का काम पूर्ववत चल रहा था। पतिया उसी तरह से पहुंचा रही थी और आनन्दीदेई उसी तरह भेड़िये के समान उसे घूर रहा था। उसका घूरना पतिया को अंदर से भी बुरा मालुम हो रहा था। उसने रधिया से शिकायत की तो वह हंस दी। कुछ कहा नहीं। मजबूर होकर पतिया उसी तरह काम करती रही।

खाने की छुट्टी में दोनों साथ-साथ खाने बैठी। जब तक खाती रहीं दोनों में एक भी बात नहीं हुई। खाना खा लेने के बाद रधिया ने पूछा— "आज कलुआ का जी कैसा रहा?"

"आज सुबह को तो काफी उसकी तबियत कुछ हल्की थी।"

"राम के आने से अब हल्की ही होती जायगी। मैं कहती थी न कि शहर के डाक्टर को दिखला, जल्दी आराम होगा। अब रोज दवाई बराबर देती जाइयो।"

"पर काकी —"

"पर क्या?"

"पैसे —"

"पैसे! कल के पांच रुपये क्या हुए?"

"वह तो कल ही उठ गये। दो डाक्टर ने लिये, एक तांगे का लगा और एक की दवा आ गई। बाकी एक आने का मैं साग ले आई। फल लाने बाकी हो हैं। डाक्टर ने कहा है कि उन्हें फल खूब खिलाओ।"

"पैसे का सवाल तो सचमुच टेढ़ा है। न जाने क्या समझ के सालिगराम ने तुझे पांच रुपये ये शायद दे दिये, नहीं तो बड़ी मुश्किल से रुपया-आठ आना ही देता है। मैं तो अब उससे कहूंगी नहीं। तू जाके कह देख, शायद और दो-एक दे दे।"

"काकी मैं —"

"क्यों क्या हर्ज है? वह मुस्कराई "जान पड़ता है वह तेरी किसी बात को नाहीं नहीं करेगा।

"क्यों?"

"यह तो तू जाने।"

"मैं क्या जानूं?"

"देखा नहीं, सारा दिन कैसा तेरे इर्द-गिर्द मंडराता रहता है।"

"काकी, मैंने तुमसे उस वक्त कहा था। पूरा शोहदा दिखता है। मैं तो उसके पास नहीं जाऊंगी, चाहे मर ही —"

इतने में काम की घंटी बज गई और दोनों अपने-अपने काम पर चली गईं।

~~~~~ 42 ~~~~~

पतिया काम तो कर रही थी, पर उसका मन कहीं अन्यत्र ही डोल रहा था। रह-रहकर उसकी आंखों के सामने बीमार पति का मलीन मुख आ जाता था। उसके लिए दवा चाहिये, फल चाहिये और इन सब के लिए चाहिये पैसा। पैसा कहां से आये? क्या वह मालकिन के आगे हाथ फैलाये? - न, उस बदमाश से तो वह हरगिज नहीं कहेगी, चाहे जान भले ही चली जाय। फल, न होगा, कल आ जायेंगे। आज तो वह डाक्टर के यहां से सिर्फ दवा उधार ले आयेगी। डाक्टर देखने में तो बड़ा भला आदमी जान पड़ता था। वह जरूर उसकी हालत पर तरस आ जायेगा और वह उसे दवा उधार दे देगा।

काम से छुट्टी होते ही वह सीधी डाक्टर के यहां गई।

"क्या! - आज कैसा हाल है?" डाक्टर ने उसे देखते ही सहानुभूति के स्वर में पूछा। पतिया को इससे बडा सहारा मिला।

"आज तो कुछ हल्का है।" उसने सकुचाते-सकुचाते उत्तर दिया।

"तो फिर वही दवा चलेगी।" डाक्टर ने नुस्खे पर तारीख डालकर उसके हाथ में पकड़ाते हुए कहा - "जाकर कंपाउंडर से दवा बनवा लो।"

तब वह कंपाउंडर के पास पहुंची। दवा बनाकर उसने पैसे मांगे। पर पैसे कहां थे जो वह देती। पतिया ने दबी जबान से कहा -

"पैसे तो आज नहीं लाई।"

"पहले जाकर पैसे ले आओ तब दवा मिलेगी।" कहकर कंपाउंडर ने शीशी भी तोड़ी रख ली और दूसरे मरीज की दवा
~~~~~

वह फिर डाक्टर के पास पहुंची। एक मरीज़ की नब्ज़ हाथ में लिये-लिये ही उसने पूछा- "अब क्या बात है- दवा मिल गई?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"पैसे नहीं हैं।"

"तो मैं क्या करूं?"

"आज दवा कम्पाउंडर से कह दें। मैं कल दे दूंगी।"

डाक्टर ने एक बार उसे ऊपर से नीचे तक देखा फिर सामने बैठे हुए एक मरीज़ की तरफ मुखातिब होकर कहा- "देखते हैं साहब, कैसा ज़माना आ गया है। लोग मुफ्त में इलाज कराना चाहते हैं। फिर ये खैराती अस्पताल आखिर किस लिए खुले हैं? यह खैराती अस्पताल नहीं है। यहां दवाई के दाम लगते हैं और नकद। समझीं! उसने पतिया की तरफ मुड़कर कहा- जा से दाम ले आओ, फिर दवा ले जाना।" फिर डाक्टर दूसरे मरीजों को देखने लगा। अब पतिया क्या करे? कितनी आशा से वह डाक्टर के पास आई थी। हाय, बिना दवा के ही उसे वापस जाना होगा। उसका भाग ही खोटा है, नहीं तो इतना बड़ा आदमी दो-एक रुपये के लिए उसे यों दुतकार न देता। उससे तो उसके गरीब पड़ोसी ही अच्छे, जो आड़े वक्त बीज-खाद और २ पैसे कौड़ी से उसकी मदद कर देते हैं। वह भारी मन से दवाखाने के बाहर निकल आई।

अब कौन सा मुंह लेकर वह घर जाये? पर जाना तो उसे था ही होगा। उसका पती उसकी प्रतीक्षा जो कर रहा होगा। वह धीरे-धीरे घर की ओर चली।

"पतिया, तुम यहां कैसे?"

वह एक दम चौंक पड़ी। मुड़कर देखा तो सामने अवतारसिंह खड़ा था।

यह यहाँ कैसे आ गया! उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि ऐसे अचानक अरविंद से उसका सामना हो जायेगा। वो फिर तो वह चुप रही। एक बार मन में आया कि बिना उत्तर दिये ही आगे बढ़ जाय। पर फिर कुछ सोचकर उसने कहा - "डाक्टर के यहाँ गई थी, दवा लेने।"

"दवा मिली?"

"नहीं!"

"क्यों?" वह कुछ पल तक चुप रही, फिर कहा

"पैसे नहीं थे।"

"तो तुमने मुझसे क्यों न मांग लिये? मैं क्या इतना निर्दयी मालूम देता हूँ पातिया! - यह लो।" और उसने जेब से दो रुपये निकालकर उसके हाथ पर रख दिये। फिर कहा - "दवा ले लो। ठीक हो जाओ - इतने से काम तो चल जायेगा।"

पातिया ने गर्दन के इशारे से हाँ तो कहा, पर उसकी सुबह की हरकतों को याद कर वह रुपये वापिस करने लगी।

"न-न- मैं वापिस नहीं लूँगा।" अरविंद ने कहा - "पांच की जगह सात पेशगी समझ लेना। सब लेखा ही चुक जायेगा।"

पातिया ने उसकी बात का सीधा-सादा मतलब लगाया और दवाखाने में घुस गई।

अरविंद का वहाँ आना अचानक न था, बल्कि वह पातिया को रोज शाम आते देखकर ही यह जानने के लिए कि वह आखिर इतनी शाम को किसके पास जाती है उसके पीछे हो लिया था। पातिया दवाखाने से दवा लेकर वापिस आई तो भी वह वहीं खड़ा था। उसको देखते ही उसने पूछा - "दवा ले आई?"

पातिया कुछ उत्तर न देकर आगे बढ़ी तो उसने फिर

कहा— "देखो, दो-चार दो जाया करे तो कोई खयाल न करो। मैं तुम्हारी हाजिरी पूरी भर लिया करूंगा। हां।- और जब कभी रुपयों की जरूरत हो तो फौरन मुझसे कहना। मैं—"

पतिया तब तक काफी आगे जा चुकी थी। अनतसिंह ने उसकी तरफ देखा और फिर सिनेमा का एक सस्ता गीत गुनगुनाता हुआ वह एक तरफ को चल दिया।

—— तीन ——

पतिया जब घर पहुंची उस समय सुक्खू उसकी प्रतीक्षा में बेचैन हो रहा था। अन्दर जाते ही बोला— "पतिया।" पतिया ने दवा की शीशी खाट के सिरहाने रख दी और उससे पूछा— "कैसा जी है?"

"दिन में तो तबियत कुछ ठीक थी पर दोपहर के बाद से हरारत फिर बढ़ गई है और जी भारी सा हो रहा है।"

"देखूं तो।" पतिया ने माथे पर हाथ धर कर देखा तो वह सचमुच तवे सा जल रहा था। बुखार पूरी तरह से उतरा तो सुबह को भी नहीं था, पर इतना हल्का जरूर हो गया था कि उसे यह आशा हो चली थी कि अब यह कम ही होता जायेगा। लेकिन इस समय फिर पहले जैसा ही हाल देखकर वह घबरा गई। आखिर ऐसा क्या हुआ? - कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि इन्होंने दिन में दवा पी ही नहीं। उसने पूछा— "दवा पी थी?"

"दवा तो मैंने पूरी पी डाली। कलुआ ने ही तो अपने हाथ से दी थी। अभी-अभी तो गया है यहां से।"

"तब जान पड़ता है, बुखार ऐसे ही बढ़ गया है।" पतिया ने अपने मन को ढाढ़स देते हुए कहा— "और दवा ले आई हूं। यह भी शीशी पेट में पड़ते ही जी बिलकुल ठीक

हो जायगा।"

"नहीं पतिया, मुझे तो कुछ और ही दिख रहा है। यह रोग मुझे लेकर ही जायेगा।"

"ऐसी कुलच्छनी बात क्यों बोलते हो? मुझे गालियां ही देनी हैं तो और बहुत सी गालियां हैं।"

"मैं सच कह रहा हूँ, पतिया, यह हड्डियों का ढांचा अब अधिक टिकता नहीं दिखाई पड़ता।"

"चुप भी रहो।"

"मुझे कहने दे पतिया। मैंने तेरे साथ बड़ा अन्याय किया है। क्या-क्या अरमान थे मन में। सोचता था तुझे रानी की तरह रखूंगा, पर एक भिखारिणी से भी बदतर करके छोड़े जा रहा हूं तुझे।"

सुक्खू की आंखों से आंसुओं का दरिया बह रहा था।

"मैं कहती हूं कि यह सब सोच-सोच कर ही तो तुमने अपनी यह दशा कर डाली है। इन फ़ज़ूल बातों से तुम्हारी तबियत भी बिगड़ती है और मेरा भी जी खराब होता है।" इससे सुक्खू को जरा सा चैन मिला और कुछ देर में उसकी आंख लग गई

पतिया ने पास बैठे-बैठे ही उसके बालों में हाथ फेरना शुरू किया। सारी रात वह लेटी नहीं और सिरहाने बैठी रही। न कुछ बनाया न खाया। न जाने उसकी आंखों की नींद कहां उड़ गई थी। तरह-तरह की भयावनी कल्पनाओं से उसका मन बेचैन हो रहा था। क्या वह सचमुच इतनी लाचार हो गई है कि अपने पति के लिए कुछ भी नहीं कर सकती?

— आठ —

जब सुबह हुई तो सारी रात जागने के कारण फातिमा की आँखें लाल हो रही थीं। जल्दी-जल्दी झाडू-बुहारी से निवृत होकर चलने को तत्पर हुई तो सुक्खू ने रोक लिया। कहा—"आज न जाओ, फातिमा!"

"बिना गये कैसे चलेगा? दवा लानी है—फल लाने हैं।"

"सब कुछ बेकार है। —मैं कहता हूं फातिमा, अगर तुम मेरे पास ही रहो। मेरा जी न जाने कैसा हो रहा है।"

"तुम तो नाहक घबराते हो। दवाई की गर्मी के कारण शायद जी भारी हो रहा है। आज मैं फल जरूर लेती आऊंगी। फल खाने से यह सब ठीक हो जायेगा।"

"यह तेरा कोरा ख्याल है फातिमा! मेरी जान में तो मेरा अन्त समय अब दूर नहीं है।"

"मैं कह रही हूँ तुम बार-बार ऐसी बातें क्यों मुंह से निकालते हो? —अभी बिगड़ा ही क्या है? डाक्टर कहता था कि कुछ दिन में ही तन्दुरुस्त हो जाओगे। —तो मैं जाती हूं। तुम आवाज देकर कल्लू को बुला लेना। —मैं आज जल्दी लौटूंगी।"

"तेरी यही मर्जी है तो जा।"

फातिमा जब दरवाजे से बाहर निकल रही थी उस समय सुक्खू एकटक उसी की तरफ देख रहा था।

— नौ —

फातिमा को उस दिन भी काम पर पहुंचने में देर हो गई। अतासिंह ने उसे देखा तो कहा—"देर हो गई है तो कोई बात नहीं है। काम करो जाकर। मैं हाजिरी भर लूगां।

लेखक श्री हृदय नारायण सरीन

"मगर मुझसे आज ईंटे न ढोई जाएंगी"

"तो सामने गिट्टी तोड़ने वाली औरतों में जाकर बैठो। जब तक जी में आये काम करना। नहीं तो बैठे-बैठे उनका काम देखना।"

पतिया एक बार उधर जाने को मुड़ी। फिर लौटकर कुछ कहने को हुई, पर जैसे किसी ने उसके मुंह पर ताला लगा दिया हो। उसके मुंह से एक शब्द न निकला।

"कुछ कहना है क्या?" अवतारसिंह ने पूछा।

"मुझे - मुझे —"

"रुपये चाहिये क्या?" अवतारसिंह ने सहारा दिया।

"हां - रुपये - पांच -"

"पांच क्या तुम्हारे लिए पचास हाजिर हैं मेरी रानी। — मगर —"

"मगर —"

"मगर यही कि इंसान इंसान की मदद करता है तो कुछ बदला चाहता है।"

"मैं भला क्या बदला दे सकती हूं? मेरे पास धरा ही क्या है?"

"तुम मुझे सब कुछ दे सकती हो। — आज दोपहर को खाने की छुट्टी में मेरे बंगले पर आ जाना। वह पीले रंग का उस तरफ दीख रहा है न, वहां। मैं तुम्हें पांच की जगह पचास दे दूंगा और वह पेशगी भी अपने खर्चे में डाल दूंगा। यहां की हाजिरी की फिक्र न करना। वह तो मेरे हाथ की बात है।"

और वह बिना जवाब पाये ही वहां से दूसरी तरफ चला गया।

यह नहीं कि पतिया ने उसका इशारा न समझा हो। वह जब से काम पर आई है तभी से उसके रंग-ढंग